AMOGHVARTA

ISSN : 2583-3189

राजनीति और पर्यावरण की पारस्परिकताः एक अध्ययन

ORIGINAL ARTICLE

Author
डॉ. उमेश प्रसाद नीरज
सहायक प्राध्यापक
विश्वविद्यालय गांधी विचार विभाग
तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय
भागलपुर, बिहार, भारत

शोध सार

यह शोध–पत्र राजनीति और पर्यावरण के परस्पर सम्बंध की व्यापक समीक्षा प्रस्तुत करता है। लेख में पर्यावरण को केवल प्राकृतिक संसाधनों तक सीमित न रखकर उसे सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संदर्भ में समझने का आग्रह किया गया है। औद्योगिकीकरण, विकास परियोजनाओं तथा राजनीतिकदृआर्थिक नीतियों ने संसाधनों के अति–शोषण और पारिस्थितिक असंतुलन को जन्म दिया है; इसका प्रमाण खनन, बड़े बांधों व औद्योगिक परियोजनाओं के कारण वन–क्षरण, विस्थापन तथा जल व मृदा प्रदूषण के रूप में मिलता है। लेख में यह भी दर्शाया गया है कि लोकतांत्रिक संस्थाएँ, प्रशासनिक फैसले किस तरह मीडिया से गठजोड़ बनाकर स्थानीय समुदायों के हितों और पारिस्थितिक सुरक्षा की उपेक्षा करते हैं। पर्यावरणीय प्रभाव आकलन से जुड़ी प्रक्रियाओं में आए संशोधनों ने जनसुनवाई एवं पारदर्शिता को कमजोर किया है, जिससे आदिवासी तथा समीपस्थ समुदायों के अधिकारों का हनन एवं सामाजिक–पर्यावरणीय असंतुलन बढ़ा है। उड़ीसा के नियमगिरि बॉक्साइट प्रकरण व अरावली पर्वतमाला से जुड़े निर्णयों के उदाहरण इस प्रवृत्ति की पुष्टि करते हैं। इस शोध–पत्र में पर्यावरण संकट को राजनीतिक–नैतिक समस्या मानते हुए सतत् विकास के लिए नीति–निर्माण में पारदर्शिता, लोक–भागीदारी, न्यायसंगत संसाधन–वितरण और स्थानीय ज्ञान के सम्मिश्रण की आवश्यकता पर बल दिया गया है। लेख में हेनरी डेविड थोरो, महात्मा गांधी, अनिल अग्रवाल, वंदना शिवा तथा रामचंद्र गुहा जैसे चिंतकों के दृष्टिकोणों का संदर्भ देकर नैतिक और वैचारिक आधार रेखांकित किया गया है। इस शोध–पत्र में पर्यावरणीय प्रभाव आकलन को सबल करने, वन अधिकारों के पालन को सुनिश्चित करने तथा स्थानीय समुदायों की मुक्त और सूचित सहमति पर आधारित नीतियाँ अपनाने का प्रस्ताव रखा गया है। अंततः यह शोध–पत्र स्पष्ट करता है कि टिकाऊ और न्यायसंगत विकास के लिए केवल तकनीकी उपाय पर्याप्त नहीं; राजनीतिक इच्छाशक्ति, कड़े नियम और सामाजिक उत्तरदायित्व अनिवार्य हैं ताकि विकास पृथ्वी की सीमाओं के भीतर सुनिश्चित किया जा सके।

मुख्य शब्द

पर्यावरण संरक्षण, राजनीति और नीति, सतत् विकास, संसाधन दोहन, औद्योगिकीकरण, वन अधिकार और जनसुनवाई.

राजनीति और पर्यावरण की पारस्परिकता

ज्ञात सभी ग्रहों में पृथ्वी ही एकमात्र ऐसा ग्रह है जहां जीवन अपने विभिन्न रूपों में मौजूद है। पृथ्वी पर विभिन्न

जटिल क्रियाओं के परिणामस्वरूप महासागर और वायुमंडल अस्तित्व में आए जिसने पृथ्वी को जीवनदायी बनाने में सहयोग किया। हवा, पानी, मिट्टी के अद्भुत तालमेल के कारण पृथ्वी पर जीवन के रंग–बिरंगे रूपों को समृद्ध बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

जहां तक पर्यावरण का सवाल है यह परितः आवरणम् अर्थात् हमारे चारों ओर आवरण को निर्देशित करता है। पर्यावरण से तात्पर्य हमारे या किसी वस्तु के आसपास की परिस्थितियों या प्रभावों का जटिल मेल जिसमें वह वस्तु व्यक्ति या जीवन स्थित होते हैं। कुछ लोग पर्यावरण का मतलब जंगल और पेड़ों तक सीमित रखते हैं तो कुछ जल और वायु प्रदूषण से जुड़े पर्यावरण के पहलुओं को सामने रखते हैं। कोई ग्लोबल वार्मिंग यानी भूमंडलीय ताप और ओजोन के छेद तक पर्यावरण को सीमित कर देते हैं तो कोई परमाणु ऊर्जा एवं बड़े–बड़े बांधों के निर्माण का विरोध और छोटे–छोटे बांधों के निर्माण को अपनाने की आवश्यकता की बात कह कर पर्यावरण के प्रति अपने दायित्व को पूरा समझ लेते हैं।

वास्तव में पर्यावरण को खंड–खंड में समझने की बजाय संपूर्णता में समझना आवश्यक है। पर्यावरण से तात्पर्य हमारे चारों तरफ जो चीजें मौजूद है चाहे वह सजीव हो या निर्जीव, जिसका हमारे ऊपर या हमारे रहन–सहन पर या हमारे स्वास्थ्य पर एवं हमारे जीवन पर प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष, निकट या भविष्य में कोई प्रभाव पड़ता है और साथ ही हमारे कारण हमारे चारों तरफ मौजूद जैविक और अजैविक घटक पर हमारे कारण कोई प्रभाव पड़ता है यानी पर्यावरण में हमारे चारों ओर घटित होने वाली वे सभी घटनाएं भी शामिल हैं जिनपर हमारा जीवन निर्भर करता है। "अतः पर्यावरण वह स्थान है जहां हम सभी एक दूसरे से मिलते हैं, जहां हमारा साझा हित निहित है और जो हम सभी का साझा उत्तराधिकार है।"[1] तात्पर्य यह है कि पर्यावरण हमारे जीवन से अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। यह हमारे जीवन के विभिन्न पहलुओं को प्रभावित करता है।

जहां तक मानव का संबंध है, इस भूमंडल पर इसे जीवों में सर्वश्रेष्ठ माना गया है। अन्य जीवों की भांति यह भी भोजन, निंद्रा, भय, और संतान उत्पत्ति जैसे चार कार्य करता है लेकिन इन चार विशेषताओं के अलावे मानव में सोचने–समझने और तर्क करने की शक्ति सबसे अधिक होती है। यही कारण है कि मानव सभ्यता के विकास क्रम में जब मानव को ज्यादा कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ा तो उन्होंने अपनी संरचनाओं में बदलाव के लिए कई पीढियां का इंतजार नहीं किया बल्कि अपनी बुद्धि और विवेक के बल पर आसपास के पर्यावरण को बदलना शुरू किया, आखेट जीवन से लेकर कृषि–आधारित जीवन तक दौड़ के सफर में मानवीय सभ्यता में बुनियादी परिवर्तन देखने को मिलता है। हजारों वर्षों में मानव और प्रकृति के बीच का संबंध अधिकांशतरू सहयोगात्मक रहा। "पारंपरिक भारतीय समाज का जीवन प्रकृति के अत्यंत निकट और उसके साथ सह अस्तित्व पर आधारित था।"[2]

लेकिन मशीन के आविष्कार के कारण औद्योगिकरण और उपनिवेश काल में अत्यधिक मुनाफे कमाने की होड़ से प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन हुआ। बड़ी–बड़ी फैक्ट्रियां, संयंत्र स्थापित हुए। जीवाश्म ईंधन की खपत लगातार बढ़ती चली जा रही है। औद्योगिकरण ने लोगों को प्रकृति पर मनुष्य के विजय का एहसास दिलाया, जिसके कारण पृथ्वी पर घुटन महसूस होने लगी है। पर्यावरण के तीनों घटक हवा, पानी, और मिट्टी दिनों–दिन प्रदूषित होते जा रहे हैं। प्रदूषण से आशय पर्यावरण में ऐसे किसी अवयव का आवश्यकता से अधिक मात्रा में एकत्र होना है जिसके कारण प्राकृतिक संतुलन और जीवन में खतरा उत्पन्न हो सकता है। मानव की गतिविधियों से ना तो ध्रुवीय क्षेत्र सुरक्षित बचे हैं और ना ही अंतरिक्ष। 1997 में पर्यावरण में होने वाले तीव्र बदलाव को देखते हुए UNO ने पर्यावरण–कार्यक्रम (UNEP) ने 1981 से 1990 के दशक को पर्यावरण पराजय का दशक माना है। आज वायुमंडल जल, थल, महासागर, नदियां सभी प्रदूषण के दायरे में आ चुका है। प्लास्टिक के अत्यधिक प्रयोग, कृषि क्षेत्र में कीटनाशकों और घातक रसायनों का प्रयोग न केवल जमीन की उर्वरता और वायु तथा जल को प्रदूषित कर रहा है बल्कि कृषि उत्पादों के माध्यम से भोजन के रूप में मानव के शरीर में प्रवेश कर मानव स्वास्थ्य को गंभीर रूप से प्रभावित भी कर रहा है। वैश्विक स्तर पर बढ़ती जनसंख्या के भरण–पोषण और सुख–सुविधाओं की मांग एवं अत्यधिक संसाधन की आवश्यकता आदि ने प्रदूषण का दायरा बढ़ा दिया है। वैश्विक जलवायु परिवर्तन और प्रदूषण के प्रभाव ने संपूर्ण मानव–सभ्यता पर संकट को बढ़ा दिया है।

"प्रकृति के साथ अत्यधिक छेड़छाड़ के कारण मानव और प्रकृति के बीच का संबंध असहयोगात्मक हो चुका है। प्रकृति के साथ अपने संबंधों में मनुष्य ने मानव होना ही भुला दिया है।"[3] "जबकि मनुष्य और प्रकृति के बीच सामंजस्य ही सच्ची सभ्यता का आधार है।"[4]

प्राकृतिक असंतुलन की बढ़ती गति की ओर ध्यान ही नहीं दिया गया। परिणामस्वरूप वैश्विक स्तर पर बढ़ते प्रदूषण के कारण जलवायु परिवर्तन, सुनामी, भूस्खलन और तूफानों आदि के खतरे बढ़ें हैं। आज पृथ्वी के अस्तित्व का भी सवाल पैदा हो गया है। "आधुनिक पर्यावरण चिंतक अनिल अग्रवाल भी इस बात का उल्लेख करते हैं कि "पर्यावरण का संकट वास्तव में संसाधनों के अति–शोषण का संकट है।"[5]

विमान और टेक्नोलॉजी के विकास ने जीवन को सरल और सुगम बना दिया है लेकिन इसके कारण हुई पर्यावरणीय क्षति भी अपूरणीय है। अतः इसके इस्तेमाल की सीमा पर और इसके विकास के पैमाने पर ध्यान देने की जरूरत है। इस संबंध में देश के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू जो विज्ञान, टेक्नोलॉजी और औद्योगिक विकास के पक्षधर थे, ने भी पर्यावरण के प्रति चिंता व्यक्त की है। 1957 में पर्यावरण के प्रति चिंता व्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा था कि "हमारे देश में अनेक विशाल नदी–घाटी परियोजनाएँ हैं, जिन्हें हमारे इंजीनियरों ने बड़ी सावधानी और परिश्रम से तैयार किया है किंतु मैं यह सोचता हूँ कि किसी परियोजना को आरंभ करने से पूर्व उस क्षेत्र के पारिस्थितिक (ecological) सर्वेक्षण पर कितना ध्यान दिया गया है, और यह जानने का प्रयास कितना किया गया है कि उससे वहाँ की जल–निकासी व्यवस्था तथा उस क्षेत्र की वनस्पतियों और जीव–जंतुओं पर क्या प्रभाव पड़ेगा। यह अत्यंत वांछनीय होगा कि ऐसी परियोजनाओं को प्रारंभ करने से पहले उन क्षेत्रों का पारिस्थितिक सर्वेक्षण किया जाए, जिससे प्रकृति के संतुलन में किसी प्रकार की गड़बड़ी उत्पन्न न हो।"[6]

आज पृथ्वी के जीवनदायी स्वरूप को बनाए रखने की जिम्मेदारी मानव के कंधों पर ही है। ऐसे में मानव को ऐसे व्यक्ति या उसके विचारों का अनुसरण करने की आवश्यकता है जिसने पृथ्वी को करीब से समझा हो और सदैव प्रकृति का सम्मान किया हो। पर्यावरण और विकास की उचित नीति में पारिस्थितिकी तंत्र को बिगड़ने से बचाने के साथ–साथ सामाजिक, आर्थिक विकास की गतिविधि पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है। पर्यावरण के अनुरूप सतत विकास हेतु प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण की विवेकपूर्ण नीति पर जोर देने की जरूरत है।

यद्यपि विकास कोई नया शब्द नहीं है, यह एक सामान्य प्रक्रिया है। विकास और परिवर्तन एक दूसरे से संबंधित है, लेकिन सभी प्रकार के परिवर्तन को विकास नहीं माना जा सकता है। जहां परिवर्तन शाश्वत प्रक्रिया है। हम चाहे या ना चाहे हमारे चारों तरफ उपस्थित वस्तुओं में समय के साथ–साथ परिवर्तन होता रहता है। आधुनिक विचारकों ने परिवर्तन को प्रभावित करने की बात स्वीकारी है और इसे इस रूप में अभिव्यक्त किया गया कि सकारात्मक दिशा में किया गया परिवर्तन ही विकास है। तात्पर्य यह है कि परिवर्तन को मनुष्य अपने आचरणों, कर्मों और विचारों से प्रभावित कर सकता है। यह अभिधारणा ही विकास के मूल में निहित है लेकिन मानवीय महत्वाकांक्षा, सुख–सुविधा की अत्यधिक लालसा ने हमारे जीवन–शैली और समस्त क्रियाकलाप को प्रकृति के साथ साहचर्य की जगह प्रकृति–विरोधी बना दिया। समाज और राष्ट्र के नियंत्रक शक्ति के रूप में राजसत्ता, जो राजनीतिक प्रक्रिया के अंतर्गत आता है। यह शक्ति आज के समय में सबसे अधिक प्रभावशाली शक्ति के रूप में विश्व के देशों को संचालित और नियंत्रित करती है। निष्कंटक शासन करने की चाहत, जिसे सत्ता और कुर्सी के मोह के रूप में भी अभिव्यक्त किया जाता है। दुनिया के विभिन्न क्षेत्रों में भी निरंकुशता, छद्म छल–कपट, बेईमानी आदि कुकृत्यों से परहेज नहीं किया जाता है बल्कि इसे अपनाते हुए अपने को पाक–साफ, लोककल्याणकारी, ईमानदार और चरित्रवान प्रदर्शित करने की कोशिश की जाती है और यह सभी सहायक क्षेत्रों को प्रभावित करता है, चाहे वह मीडिया हो न्यायपालिका हो, कार्यपालिका और व्यवस्थापिका ही क्यों ना हो, यह सबको प्रभावित कर अपने शक्ति को बचाए रखने के लिए उसका इस्तेमाल करता है।

यद्यपि राजनीति जो राज और नीति दो शब्दों के मेल से बना है जो सत्ता संचालन के लिए नीति के अनुकूल व्यवहार करने के सिद्धांतों पर आधारित है। राज का संबंध सत्ता से और नीति का संबंध उस व्यवस्था से है जिससे

सत्ता का संचालन होता है। अतः सत्ता का संचालन नीति के अनुकूल व्यवहार करने के सिद्धांत पर आधारित है। यद्यपि राजनीति, सत्ता और भौतिकता के नजदीक होती है इसलिए उसके अनैतिक होने के खतरे ज्यादा ही हैं। लोकतांत्रिक व्यवस्था में राजनीति लोकनीति पर आधारित होती है, जहां जनता सर्वोपरि है। आमजन को केंद्र में रखकर निर्धारित नियम–परिनियम के अनुरूप सरकार के तीनों अंग काम करते हैं।

वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था में राज्य है, सत्ता है, लेकिन नीति कहीं दिखाई नहीं पड़ती है। राजनीति के क्षितिज पर नीति और अनीति के पैमाने गायब हैं। आधुनिक राज्यों में राजनीतिक निर्णय प्रायः चुनाव जीतने और आर्थिक संपन्नता के लिए जाते हैं जिसके कारण वनों की अंधाधुंध कटाई, खनन परियोजनाओं का विस्तार, नदियों पहाड़ों और तटीय क्षेत्र का व्यवसायीकरण, आदिवासी और स्थानीय समुदाय का विस्थापन देखने को मिलता है। इस दिशा में सरकार और पूंजीपत्तियों के बीच गठजोड़ के कई एक उदाहरण हैंः पर्यावरण प्रभाव आकलन 2006 के बाद कई संशोधनों में जनसुनवाई की अनिवार्यता कम की गई, कई एक परियोजनाओं का काम शुरू होने के बाद मंजूरी दी गई जिसके कारण मध्य प्रदेश, झारखंड, ओडिशा आदि राज्यों के खनन परियोजनाओं में जंगलों को बड़े पैमाने पर काटी गई, आदिवासी ग्राम सभाओं आदि की सहमति लेना भी जरूरी नहीं समझा गया। वन अधिकार अधिनियम 2006 की अवहेलना का उदाहरण – उड़ीसा के नियमगिरि पहाड़ी पर वेदांता बॉक्साइट परियोजना को आदिवासियों के धार्मिक और आजीविका संबंधी अधिकारों को ध्यान में रखे बिना दी गई मंजूरी। यद्यपि सुप्रीम कोर्ट के हस्तक्षेप के बाद यह परियोजना रुकी। राष्ट्रीय विकास के नाम पर वन संरक्षण अधिनियम में ढील दी गई और राष्ट्रीय महत्व की परियोजनाओं को छूट दी गई। इसका ताजा उदाहरण अरावली पर्वतमाला पर पठार और पहाड़ की ऊंचाई सीमा का निर्धारण कर खनिज खनन के लिए रास्ता साफ करना है। देश के लिए पर्यावरण का लाइफ लाइन कहे जाने वाले इस इलाके को अंततः सुप्रीम कोर्ट के दखल के बाद बचाया जा सका।

इस नियंत्रित करने वाली शक्ति जिसे लोकतंत्र का चौथा स्तंभ के रूप में जाना जाता है, अपने को तटस्थ रखने में अक्षम रहा है। राजनीति और मीडिया के गठजोड़ ने लोक कल्याणकारी कार्य की बाध्यता से राजसत्ता को मुक्त करने का काम किया है। परिणामस्वरुप सकारात्मक विकास की परिकल्पना में पैमाने की सीमा टूटी है। पर्यावरण संरक्षण के वैज्ञानिक मापदंडों के अनुरूप विकास के निर्धारित प्रक्रिया को धता बताकर आधुनिक विकास की पर्यावरण विरोधी स्वरूप को आगे बढ़ा रही है। जल–जंगल–जमीन, पहाड़ों का विकास के नाम पर अत्यधिक दोहन किया जा रहा है। इसके दुखद परिणाम सामने आ रहे हैं। पर्यावरण प्रदूषण एक वैश्विक स्तर पर समस्या के रूप में सामने आ रहा है। यह ऐसी समस्या है जो धरातल पर मानव–जीवन के अस्तित्व के लिए खतरा बनता जा रहा है। पर्यावरणविद् अनिल अग्रवाल मानते हैं कि "पर्यावरण का संकट वस्तुतरू राजनीतिक और आर्थिक निर्णयों का परिणाम है, जहां विकास के नाम पर प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन किया गया।"[7] वंदना शिवा "राजनीतिक–आर्थिक शक्तियों द्वारा प्रकृति को मात्र संसाधन समझना ही पर्यावरण विनाश का मूल कारण मानते हैं।"[8] भारतीय विकास की नीति पर्यावरण को सुरक्षित करने की दिशा में अपर्याप्त है। रामचंद्रा गुहा ने राज्य, विकास और पर्यावरण के संबंध में इस बात का उल्लेख किया है कि "आधुनिक राज्य की विकास नीतियों ने पर्यावरण को राजनीति का उपकरण बना दिया है जिसके कारण वनों, नदियों और आदिवासी क्षेत्र का तीव्र विनाश हुआ है।"[9] पर्यावरण प्रदूषण गम्भीर समस्या बनता जा रहा है। यह प्रदूषण वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, मृदा प्रदूषण और ध्वनि प्रदूषण के रूप में तो है ही इसके साथ ही मानवीय सामाजिक पर्यावरण भी प्रदूषण का शिकार हुआ है। समाज में असमानता, सांप्रदायिकता, धार्मिक–उन्माद, छुआछूत, विद्वेष, घृणा का दायरा बढ़ा है। वोट आधारित राजनीति ने लोकतंत्र के सुंदर स्वरूप को दरकिनार कर बहुसंख्यकवाद को अंगीकार करने के लिए लालायित दिखता है। जहां बहुसंख्यक अल्पसंख्यक के अधिकारों को मानने से इनकार करता है। यह लोकतांत्रिक प्रक्रिया को कलंकित करता है। यहां सुकरात के इस कथन पर ध्यान रखने की जरूरत है कि यदि हर आदमी अपने स्वार्थ के लिए कानून के साथ खिलवाड़ करें तो किसी की लिए भी न्याय से लाभ पाने की गारंटी नहीं रहेगी और कोई भी सुरक्षित नहीं रहेगा। अतः राजनीति को नीति आधारित बनाने की सम्पूर्ण प्रक्रिया को सबल होने की जरूरत है। जहां राजसत्ता के साथ साथ जनता को भी जबाबदह होने की जरूरत है। अधिकार के साथ कर्तव्य की समझ स्पष्ट होनी चाहिए।

पर्यावरण और विकास की उचित नीति में पारिस्थितकीय तंत्र को बिगड़ने से बचाने के साथ–साथ सामाजिक आर्थिक विकास की गति को तेज करने पर ध्यान देने की जरूरत तो है ही साथ ही गांधी जी के यह वाक्य अवश्य ही ध्यान में रखने की जरूरत है कि–"पृथ्वी हर मनुष्य की आवश्यकता पूर्ति कर सकती है उसके लोभ का नहीं।"[10] इसलिए पर्यावरण के अनुरूप सतत् विकास की प्रक्रिया को जारी रखने हेतु प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण की विवेकपूर्ण नीति पर ध्यान देने की जरूरत है। प्रकृति के साथ मानव के संबंध में थोरो ने कहा है कि ''दुर्गम प्राकृतिक स्थलों में ही विश्व का संरक्षण निहित है।''[11] मनुष्य को स्वयं को प्रकृति की गोद में पलने वाले अथवा इसका अभिन्न अंग समझना चाहिए अर्थात पश्चिम की प्रकृति पर विजय की अभिलाषा की जगह प्रकृति के सहयोग पर आधारित जीवन शैली को आगे बढ़कर जो भारतीय परंपरा में पहले से मौजूद है हमारी परंपरा में बहुत सारी अनावश्यक चीज भी है जिसे दरकिनार कर पर्यावरणीय मापदंडों के अनुरूप विकास नीति को अपना कर ही हम पर्यावरण को भावी पीढ़ी के लिए सुरक्षित और संरक्षित रख सकते हैं।

इसमें राजनीति महत्वपूर्ण एवं निर्णायक भूमिका में है, क्योंकि इन सब की क्रियात्मक पक्ष को निर्धारित और निर्देशित करने की शक्ति राजनीति में ही अंतर्निहित है।

निष्कर्ष

स्पष्ट है की पर्यावरण प्रदूषण केवल सामाजिक, औद्योगिक और तकनीक की समस्या नहीं बल्कि राजनीतिक निर्णय और सत्ता द्वारा नीति निर्माण की प्रक्रिया की भी महत्वपूर्ण भूमिका है। पूंजी और सत्ता के गठजोड़ जो विकास के नाम पर राजनीतिक लाभ के लिए पर्यावरणीय मानदंडों में परिवर्तन कर उत्खनन, औद्योगिक इकाई की स्थापना, बड़े–बड़े बांधों का निर्माण आदि कार्य पर्यावरण को गंभीर क्षति पहुँचा रहे हैं। चुनावी राजनीति के कारण राजनीतिक इक्षाशक्ति के अभाव ने भी पर्यावरणीय कानून को लागू करने में ढीलाई बरती जाती रही है। आज भी देश में पर्यावरण प्रदूषण जैसे गंभीर मुद्दे राजनीतिक मुद्दा नहीं बन पाया है। सरकारें पर्यावरण संरक्षण की जगह तात्कालिक आर्थिक और राजनीतिक हितों को प्रमुखता देती है। आवश्यकता है पर्यावरण के मुद्दे पर राजनीति को संवेदनशील, जवाबदेह और नैतिकवान बनाने की क्योंकि इन सभी मुद्दों में राजनीति महत्वपूर्ण एवं निर्णायक भूमिका में है, क्योंकि इन सबकी क्रियात्मक पक्ष को निर्धारित एवं निर्देशित करने की शक्ति राजनीति में अंतर्निहित है। आज सभी स्तरों पर इस बात को समझना होगा कि "पर्यावरण की रक्षा का अर्थ मानव जीवन की रक्षा है।"[12]

संदर्भ सूची

1. स्टुअर्ट एल. (1963) *उजालः द क्वाईट क्राइसिस,* हॉल्ट, राइनहार्ट एण्ड विंस्टन, न्यूयॉर्क, पृ. 01।
2. धर्मपाल (2000) *द ब्युटीफूल ट्री,* अदर इंडिया प्रेस, गोवा, पृ. 34।
3. शूमाकर, ई. एफ. (1973) *स्मॉल इज़ ब्यूटीफुल,* हार्पर एण्ड रो, न्यूयॉर्क, पृ. 16।
4. ठाकुर, रवींद्रनाथ (1941) *सभ्यता और संकट,* विश्वभारती प्रकाशन, शांतिनिकेतन, पृ. 14–15।
5. अग्रवाल, अनिल (1985) *एनवायरनमेंटल क्राइसिस इन इंडिया,* सेंटर फॉर साइंस एण्ड एनवायरनमेंट, नई दिल्ली, पृ. 12।
6. नेहरू, जवाहरलाल (1957) मुख्यमंत्रियों के नाम पत्र, खंड 4 (1954–1957), पत्र दिनांक 15 अगस्त 1957, जवहरलाल नेहरू मेमोरियल फंड, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, पृ. 543–544।
7. अग्रवाल, अनिल (1985) *एनवायरनमेंटल क्राइसिस इन इंडिया,* सेंटर फॉर साइंस एण्ड एनवायरनमेंट, नई दिल्ली, पृ. 21।
8. शिवा, वंदना (1977) Staying Alive : Women, Ecology and Development, जेड कुम्स, लंदन, पृ. 38।
9. गुहा, रामचन्द्र (2000) Environmentalism :A Global History, पेंगुइन बुक्स, नई दिल्ली, पृ.116।
10. गांधी, महात्मा (1929) *यंग इंडिया,* नवजीवन प्रकाशन गृह, अहमदाबाद, पृ. 241।
11. थोरो, हेनरी डेविड (1863) एक्सकर्शनस, हॉटन; मीफलिन, बोस्टन, निबंध : Walking, पृ. 239।

——==00==——